कोंकणी कवि प्रकाश पाडगांवकार की रचना-यात्रा

चन्द्रलेखा डि सौझा

समकालीन कोंकणी काव्य संसार में मानवीय जीवन की संघर्ष धर्मिता, जिजीविषा, रागात्मक बोध की संवेदनशीलता और दैनंदिन विसंगतियों की अभिव्यक्ति कलात्मक रूप में अभिव्यक्त होती है। प्रकृति के वैभवपूर्ण साहचर्य ने कोंकणी भाषा के रचनाकारों को जीवन मूल्यों के प्रति विरल संवेदना प्रदान की है।

बाकीबाब बोरकर, र. वि. पण्डित, मनोहर सरदेसाय आदि श्रेष्ठ रचनाकारों की सहवर्ती यात्रा में प्रगतिशील सोच की परम्परा में प्रकाश पाडगांवकार मानवीय संवेदना और रागात्मक बोध के विलक्षण कवि स्वीकार किये जाते हैं।

प्रकाश पाडगांवकार के काव्य में भाषा-भावानुभूति की सहज सम्प्रेषणीयता और सौंदर्य बोध के चित्र अपनी प्रगतिशील आस्थाओं और सौंदर्यबोध के रूप में उपलब्ध होते हैं। वर्तमान दौर तक उनके तीन काव्य संग्रह 'उजवाडाचीं पावलां', 'वास्कोयन', 'हांव मनीस अश्वत्थामो' क्रमशः १६७६, १६७७, १६८५ में प्रकाशित हुए हैं।

उजवाडाची पावलां नामक काव्य संग्रह में प्रकाश पाडगांवकार ने मानवीय जीवन के संघर्ष और विपरीत परिस्थितियों में प्रगतिशील आस्थाओं को सहज रूप में अभिव्यक्त किया है। अंधेरे और असहाय स्थिति में भटक रहे लोगों को उन्होंने 'उजवाडाची पावलां'— उजाले की किरण-पाने और देने के लिए प्रेरित किया है। यह उजाला आगामी भविष्य का संकेत है। जिनको अपने जीवन में हमेशा अंधेरे की गर्त में जीना पड़ता है, उन सबके प्रति कवि चिन्तित है, वह शोषित लोगों के लिए सहयात्री रूप में कुछ कर तो नहीं सकता, पर अपनी काव्य रचनाओं में उनके प्रति सहानुभूति और संवेदना तो अभिव्यक्त कर सकता है। इस सहानुभूति और संवेदना की ललक को हम चाहें तो 'पक्षधरता' कर्म की संज्ञा भी दे सकते हैं।

पाडगांवकार 'वास्को' शहर की औद्योगिक उत्पादन की जटिलता में मानवीय सम्बन्धों की अधोगति से व्यथित हैं। 'वास्कोयन' काव्य संग्रह में मानव-जगत, प्रकृति, साहचर्य तथा उनके अन्यान्योक्ति सम्बन्धों पर अपनी संवेदना, सहानुभूति प्रकट करते हैं।

कवि पाडगांवकार औद्योगिकीकरण के खिलाफ नहीं है, पर जो औद्योगिक विकास समाज के सभी वर्गों को विकास के समान अवसर न दे सके वह भला किस काम का?

प्राकृतिक-सम्पदा और प्राकृतिक साहचर्य को अगर हमने संवारा या संभाला नहीं तो उसके दुष्परिणाम आनेवाली पीढ़ियों को भुगतने पड़ेंगे। मनुष्यता की जिस लम्बी प्रक्रिया में कवि पाडगांवकार अपने आपको समाज एवं प्रकृति के प्रति उत्तरदायी मानते हैं, उसी भावना एवं मनुष्यता के नाते पाडगांवकार का मन क्षुब्ध होता है :

व्हांवताना जुवारी ही
दुशीत जायत रावतली ?....
वास्को ओगीच उरतली ?...
मनीस मंगलार पावतले
पृथ्वी चंद्राक तेंकतली
वास्को अशीच उरतली ?... 'वास्कोयन-६६'

अर्थात 'वास्को' शहर में बहने वाली जुवारी नदी क्या हमेशा दूषित होती रहेगी और वास्को तथा वास्को का (प्रकृति प्रेमी) समुदाय खामोशी से यह सब देखता रहेगा ? वैसे मनुष्य मंगल नक्षत्र तक पहुंचेगा, पृथ्वी चंद्रमा को स्पर्श करेगी, पर तब भी क्या वास्को में गंदगी और प्रदूषण की स्थिति वैसी ही बनी रहेगी ?

'वास्कोयन' में संस्कृति के ह्रास के चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। विभिन्न देशों से बड़े-बड़े जहाज़ आते हैं। उन जहाज़ों पर अलग-अलग किस्म के लोग भी आते हैं और अपनी दैहिक वासना आदिम पशु के समान भोगकर चले जाते हैं। उसी वासना क्रम से उपजी कन्या को देखकर कवि प्रश्न करता है :

रुपयों के बल पर,
होती है जहां शारीरिक वासना की विमुक्ति
ऐसे रूप और नखरों के बाज़ार में
यह सुन्दर लड़की किसकी है ?
केश विन्यास है जिसका
जर्मनी की राजकुमारी जैसा
नीली आंखें हैं जिसकी
रूमानिया की सुकन्या जैसी
गालों पर बिखरी लालिमा
कश्मीर की कलियों जैसी
कोमल-कोमल शरीर
जापानी गुड़िया जैसा—
देश-देशान्तर की सुन्दरता को
आभासित करती
यह सुन्दर लड़की किसकी है ?

(कोंकड़ी से अनूदित)

अब इस नवजात, नवागंतुक लड़की को किस देश-देशांतर की धरोहर माना जाय, इसे क्या उपमा दी जाय। इसका निर्णय, कवि प्रकाश पाडगांवकार पाठकों की समझ पर छोड़ देते हैं।

वर्तमान यांत्रिक जीवन में हर मनुष्य भटका हुआ है और यह भटकन विश्वव्यापी है। यह भटकाव बोध-द्वितीय महायुद्ध के परवर्ती परिवेश और वैचारिक विशृंखलता का अनिवार्य परिणाम है।

प्रश्न चिन्हों के सामने जवाब कहाँ-कहाँ दिखाई देंगे। फिर भी मनुष्य-शक्ति ही कुछ ऐसी हठधर्मिता अपनाती है कि वह क्या नहीं सम्भव कर पाती है। प्रकाश पाडगांवकार ने 'हांव मनीस अश्वत्थामो' नामक कविता संग्रह में 'सूर्यचि दुख्ख' शीर्षक कविता दीन-हीन और पस्त हिम्मत मनुष्य की आस्था एवं जिजीविषा से रची है :

मैंने जीवन के अंधकार में। अंधकार के नक्षत्रों में
आती हुई पुकार को सुना —
सूर्य ने अपने प्रकाशमय हाथ। मेरी ओर पसारकर
मांग रहा है मुझसे अंधकार की भिक्षा····।
मैंने सूर्य से कहा—। शहर उदित होता है।
तुम्हारे आने से। शहर अस्त होता है।
तुम्हारे जाने से। तुम स्वयं ही हो प्रकाश पुंज

तुम्हारी किरणों से। सिरजती है ऋतु अपने आपको क्यों मांग रहे हो फिर। तुम मुझसे अंधकार की भिक्षा तब सूर्य प्रत्युत्तर देता है कि मैंने अपने प्रकाशमय जीवन में कभी भी अंधकार का अनुभव नहीं किया है। अंधेरा क्या चीज़ है मुझे नहीं मालूम।... मैंने कहा : सहेजते हुए दुःख को जैसे। टपकता है आंखों में दर्द का राग वैसे ही अंधकार के मौन महासागर में। बहती है तारों की तेजस्वी लहरें। अंधकार के सहयात्री रूपों में। बंद कर लो अगर तुम्हारी आंखों को क्षण भर के लिए दिखाई देगा तुम्हें हर जगह। अंधकार ही अंधकार गहनतम अंधकार जीवन में। सुनकर यह। सूर्य ने कहा भाग्यवान मनुष्य। असम्भव है ऐसा। मैं स्वयं भू प्रकाश हूं प्रकाश के अतिरिक्त। कुछ भी नहीं है मेरे जीवन में। पर रहता है तुम्हारे जीवन में। प्रकाश-अंधकार का बोध। बंद किए अगर मैंने अपने नेत्र। तब भी चारों ओर विस्तार रहेगा। प्रकाश के बोध का। इसीलिए मांगते हैं तुमसे। मेरे प्रकाशमय हाथ अंधकार की भिक्षा····। उसी समय से। अकिंचन मैं। सूरज की याचना देख-कर। हज़ार-हज़ार आश्वासनों से स्पंदित होकर। अपने

जीवन के अंधकार में। सूर्य के प्रकाश को। अपने आप में समाहित करते हुए जी रहा हूं। एक सम्राट की तरह। कविता के अंत में विलक्षण रूप से 'मानवीय जीवन' की उपलब्धि दर्शायी गयी है। जब तक दुख नहीं हो मानव को सुख की पहचान क्यों कर हो सकेगी। अंधेरा न हो तो उजाले की पहचान कहां? वास्तव में मनुष्य जीवन ही संतुलित जीवन है। तब फिर देव बनने के बजाय मनुष्य ही क्यों न बना जाये। इसीलिए प्रकाश पाडगांवकार कहते हैं कि इसी प्रकाश रूपी स्वयं भू सूर्य को मैंने अपने जीवन के अंधेरे में भर लिया है और अब मैं एक सम्राट की तरह जी रहा हूं।

वास्तव में देखा जाय तो अकिंचन रहते हुए भी अंधेरे की गर्त में सम्राट की तरह जीनेवाला मनुष्य ही सबसे श्रेष्ठ है। वह उजाले के लिए जी रहा है, नवीन समाज की संरचना के हेतु जी रहा है।

कोंकणी काव्य के प्रारंभिक पुरस्कर्ता बाकीबाब बोरकार ने कहा भी है कि प्रकाश पाडगांवकार की कविता में 'महर्षि अरविन्द' के दर्शन का प्रभाव है।

'महायोगी अरविंदाक' कविता में कवि उन्हें अमृत की नदी, और उजाले का दूत कहते हैं। पर उनके यहां जो उजाला है वह समानता का उजाला है जिसमें हर धर्म समान भावना वाला है।

इगर्जीतले मीस तूं, देवलांतली आरती
तूं मशिदीतलो नमाज, सगलया धर्म-भक्ति
तूं जिणेक देग दिवपी चैतन्याची बाग
आनी हाडपी शेणिल्ल्या मनीष कुलयेल जाग।

(उजवाडाचीं पावलां-पृ. २८)

कवि ने यहां पर विभिन्न धर्मोपसना सम्बन्धी विचार अभिव्यक्त किये हैं। कविता में कहीं भी तत्त्वज्ञान की उद्घोषणा नहीं है। न ही प्रकाश पाडगांवकार के पास ब्रह्म, माया, सृष्टि जैसे बड़े-बड़े शब्द हैं। उनके पास हैं: महर्षि अरविन्द के विचार जो मानव के उदात्तीकरण के साथ सम्बन्धित हैं। जिससे नया समाज समानता का समाज निर्माण होगा। जिसमें सभी धर्मों को समान दर्जा प्राप्त होगा और धरती स्वर्ग बनेगी।

प्रकाश पाडगांवकार सुनहरे भविष्य को आमंत्रित करते हुए सर्वधर्म समन्वय की बात पर भी बल देते हैं।

द्वितीय महायुद्ध के बाद हमारी बहुत सारी भावनाएं, मान्यताएं बदल गई हैं। यहां तक कि भगवान की कल्पना और अवधारणा तक बदल गई है। वर्तमान दौर के 'राम की स्थिति' और 'द्वापर युग के राम' में कितना अंतर है, इसका निम्न काव्य रूपक उद्धरणीय माना जा सकता है:

खेलणें समजून
खेलपाक बाटकुलो चंद्रच जाय
म्हूण आडांगीपणां करपी
अपुरबाये राम
उपाशी वा अद्यांपोटार वाडपी
नशिब फुटको भुरगो आशिल्लो जाल्यार?
त्याच चंद्राक तो घडये
रिती बाटली समजुपाचो!

वैसे हम सब जानते हैं कि बचपन में चन्द्रमा पाने का हठ राम ने किया था और वे दर्पण में उसका प्रतिबिम्ब देखकर संतुष्ट भी हो गये थे। पर आज के जमाने में, भुखमरी में पैदा हुआ वह राम बदनसीब है, वह भी रोता है। पर आज का आम बालक रूपी राम उस चन्द्रमा को खिलौना नहीं समझता है। दोनों युग के परिवर्तन से वास्तविकता में अंतर आ गया है। दोनों युग के अलग-अलग स्वरूप को यथार्थपरक रूप में चित्रित करने की वे स्पृहणीय क्षमता रखते हैं।

प्रकाश पाडगांवकार की रागात्मक बोध की कविताओं में 'प्रेम' का कलात्मक वर्णन उपलब्ध होता है। वर्तमान समय में चींटियों की तरह रेंगते हुए मनुष्य दिखाई देते हैं; जब जीवन में रेंगना ही हमारी नियति बन गई है। तब प्रेम की कल्पना भी, फूलों की, चाँदनी की, सुन्दरता ही कैसे अक्षुण्ण रह सकती है? यथा—

प्रिये तुका मेलपाक हांव
म्हज्या मोगा—सुर्याचें भांगर घेवन
गर्देच्या किचकटीतल्यान
यंत्राच्या घरघरीतल्यान वाट काडीत

न्हंयो, बझरे हुपून आयलो
आनी तूं म्हणटां :
असो मदीच खंय हेवटेन ?"

[हांव मनीस अश्वत्थामो-पृ. १६]

प्रेमी अपनी प्रिया से मिलने के लिए, प्रेम रूपी सूर्य का सोना लेकर, भीड़ की 'किचकट' [भयावहता] में से, यंत्र की घरघराहट में से मार्ग बनाता हुआ, नदी झरनों को पार करके मिलन रचता है। जो संशय, हताशा के क्षणों में सुख के विरल क्षण होते हैं।

हमारी वर्तमान औद्योगिक सभ्यता तथाकथित प्रगतिशील सभ्यता नदी-झरनों, वृक्षों-कुंजों की सुन्दरता को कब का विनष्ट कर चुका है। हम तो यंत्रों की घरघराहट, भीड़ उसकी अकुलाहट में व्युत्पन्न संतानें हैं। नाजुक फूलों, झरनों की अल्हड़ता, हरियाली, पक्षियों की चहचहाहट, पेड़ पौधों का मस्त हवा में झूलना, इन सबके लिए हमारे पास समय है क्या? प्रकृति का संदेश सुनने के लिए हमारे पास संवेदनशील कर्ण हैं क्या? हमारे कान तो यंत्रों की घड़घड़ाहट का शोर सुनने के अभ्यस्त हो गये हैं। लगातार शोर सुनने की, भीड़ में रहने की, आपाधापी में जीवन यापन करने की हमें आदत-सी हो गयी है। हममें मकड़ी के जाले में घूमने, उलझने और उसी में फंसने की आदत तो नहीं पड़ गयी है।

जब हमने प्रकृति के स्वरूप को परिवर्तित कर दिया है, तब क्या हमारे प्रेम के स्वरूप में परिवर्तन नहीं आयेगा? स्वप्न लोक में जाने की इच्छा होते हुए भी कवि जिन्दगी में गरीबी को देखता है। क्षण-क्षण में परिवर्तित होने वाले जीवन-चित्रों के रंगों को रेखांकित करता है। जिसमें उसका, हमारा हमारे बृहत्तर समाज के संवेदनशील मन का परिचय भी पाया जा सकता है।

४, शशी सदन, फर्स्ट फ्लोर,
मुंडवेल, वास्को डी-गामा,
गोवा–४०३ ८०२

मेरे प्रभु के सहस्रों रथ हैं। कभी मैं उसका दर्शन चरखे में करता हूं तो कभी साम्प्रदायिक एकता में और कभी अस्पृश्यता निवारण में और इस तरह मेरी भावना मुझे जहां खींच ले जाती है, उसके अनुसार मैं अपने प्रभु को देखता हूं और सेवा के माध्यम से उसके साथ सान्निध्य स्थापित कर लेता हूं।

महात्मा गांधी